

## श्रीमद्भगवद्गीता में वैराग्य का स्वरूप

डॉ० राजकुमार, डॉ० राजनरायन मिश्र

शोध छात्र (डी.लिट.), संस्कृत विभाग, बी.एस.ए. कॉलेज, मथुरा

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बी.एस.ए. कॉलेज, मथुरा

### प्रस्तावना

विरागस्य भावः इति 'वैराग्यं' अर्थात् मनुष्य के अन्दर सांसारिक विषय वासनाओं व इच्छाओं का अभाव (विरक्ति) ही वैराग्य है। विगतः रागः विरागः अर्थात् प्राणी के अन्दर से राग के निकल जाने को 'विराग' कहते हैं। सांसारिक वस्तुओं (यथा धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र आदि) के प्रति मोहरूपी दलदल को पार करने से वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है—

*यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।  
तदा गन्ता निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥१*

जगद्गुरु शंकराचार्य जी के अनुसार समस्त प्रकार के भोगों में निःस्पृहता ही वैराग्य है —

*ऐहि कामुष्मिकार्थेषु ह्यनित्यत्वेन निश्चयात् ।  
नैः स्पृह्यं तुच्छ बुद्ध्या यत्तवैराग्यमितीर्यते ॥१*

महर्षि अष्टावक्र जी के अनुसार समस्त इन्द्रिय विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग ही वैराग्य है— *मुक्तिमिच्छसि चैतात् विषयान विषवत्यज ।*

*क्षमार्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज ॥१*

वैराग्य का अर्थ संसार को छोड़ना अर्थात् उससे भागना नहीं है; अपितु उसके प्रति आसक्ति का त्याग (निरासक्त भाव) है। ऐसा ही सन्त कबीर दास जी ने भी कहा है — मन न रंगाये रंगाये योगी कपरा। संसार बन्धन नहीं है; अपितु उसके प्रति जो आसक्ति या लगाव है वही बन्धन है। संसार और आत्मा दो छोर हैं। बाहर है संसार और भीतर है आत्मा अर्थात् परमात्मा दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न दिशाओं में जा रहे हैं मनुष्य दोनों के मध्य में खड़ा है। यदि वह संसार की तरफ भागता है तो परमात्मा से दूर हो जाता है। यदि वह परमात्मा की ओर जाना चाहता है तो उसे संसार से विमुख (विरक्त) होना पड़ेगा। अतः संसार से विरक्ति ही वैराग्य है।

इहामुत्रार्थफलभोगविरागस्तदनन्तरम्<sup>4</sup> अर्थात् संसार एवं पारलौकिक समस्त प्रकार की वासनाओं का त्याग ही वैराग्य है। ऐसा ही वेदान्तसार में कहा गया है— नित्यानित्यवस्तुविवेक इहामुत्रार्थफलभोगविरागः<sup>5</sup> अर्थात् सृष्टि में क्या नित्य है क्या अनित्य है इसका ज्ञान होते ही इस लोक (संसार) और परलोक (स्वर्गादि) सम्बन्धी समस्त विषयों से विरक्ति हो जाती है यही वैराग्य है। वैराग्य से आशय संसार में जितने भोग्य पदार्थ हैं उनमें रुचि न लेना, वे भोग चाहे मन के हों, शरीर अथवा वाणी के हों या स्वर्गादि सुखों के ही क्यों न हों उन सबके प्रति अरुचि ही नहीं घृणा भाव पैदा करना जिससे वे मन को अपनी ओर आकर्षित न कर सकें<sup>6</sup> श्रीमद्भगवत महापुराण के महात्म्य में गोकर्ण जी ने वैराग्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है —यह संसार असार है, अत्यन्त दुःखरूप और मोह

मे डालने वाला है पुत्र किसका ? ? धन किसका ? स्नेहवान पुरुष रात दिन दीपक के समान जलता रहता है। सुख न तो इन्द्र को है और न चक्रवर्ती राजा को ही, सुख तो केवल विरक्त वैराग्यवान को ही है।<sup>7</sup>

*देहेऽस्थिमांसरुधिरैर्भिमति त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा  
ममतां विमुञ्च ।  
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभंगनिष्ठं वैराग्य राग रसिको भव  
भक्ति निष्ठः ॥१*

अर्थात् यह शरीर हड्डी मांस और रुधिर का पिण्ड है इसे मैं मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादि को अपना कभी न माने। यह संसार क्षण भंगुर है, इसकी किसी भी वस्तु को स्थायी समझकर इसमें राग न करें और एकमात्र वैराग्य के रसिक होकर भगवान की भक्ति में लगे रहें। भगवान श्री राम ने वैराग्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वशिष्ठ जी से कहा है —हे मुने! न मैं देह शरीर का हूँ और न यह देह मेरा है, ऐसा विचार करके जो आत्मा में विश्रान्ति पाते हैं वे ही मनुष्य पुरुषों में उत्तम हैं। मान और अपमान से पूर्ण अनेक विषय के लार्थों से मनोरम जो दोष दृष्टि पाते हैं वे शरीर मात्र में अभिमान रखने वाले मनुष्य को मार लेती है। शरीर रूपी गढ़के में शयन करने वाली उत्तम और कोमल शरीर वाली अहंकार की चमत्कृति जो भोग तृष्णारूपिणी पिशाचिका है उसने कपट से हमको ठग लिया है। बड़े खेद की बात है कि इस शरीर मात्र में विश्वास करने वाली मिथ्या अज्ञानरूपी दुष्टराक्षसी ने विचारी विवेक रूप से सहायक शून्य अकेली सदबुद्धि को ठग लिया है। इस दृश्य मात्र जगत् में कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है तो यह दृश्य के अन्तर्गत शरीर कब सत्य हो सकता है; परन्तु क्षणभंगुर इस शरीर ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र को ठग लिया है। यथा झरने के जल का कण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ऐसे ही यह शरीर रूपी पुतला बिना यत्न ही शीघ्र गिर जाता है। समुद्र के फेन के समान शीघ्र नष्ट होने वाला यह शरीर कार्यरूपी जाल के चक्र में परोपकार शून्य व्यर्थ ही स्फुरित हो रहा है। मिथ्या अज्ञान का विकार स्वप्न के नगर के तुल्य प्रत्यक्ष नाश वाले इस शरीर में मुझे क्षण भर के लिए विश्वास नहीं है। निरन्तर एक दूसरे अधिक क्षणभंगुर जो विद्युत् शरत्काल का मेघ और गंधर्वनगर कार्य के जो समूह है उन सब में विजय पाने अनित्यता में वाला प्रबल दोषों के मूल कारण इस शरीर को तृण के समान त्यागकर मैं सुखी हूँ।<sup>8</sup> जिस प्रकार अच्छे से अच्छा कोई एक ही प्रकार का सुस्वादु भोजन कई दिन तक लगातार खाया जाय तो सभी के मन में उसके प्रति घृणा (विरक्ति) हो जाती है उसी प्रकार नित्य निरन्तर भोग वासनाओं से विरक्ति हो जाती है। राजा भर्तृहरि इसका जीता जागता उदाहरण हैं। राजा भर्तृहरि अपने रनिवास में अनेकों रानियों के साथ भोग वासनाओं में नित्य निरन्तर लिप्त रहते थे उन्होंने भोग विलास के समक्ष अपने राज्य कार्य को भी छोड़ दिया था। भोगवासनाओं की आसक्ति से वे उपरमण की दशा को प्राप्त हो गये और उन्हें वैराग्य हो गया उन्होंने शतकत्रय

वैराग्य शतक, श्रृंगार शतक तथा नीति शतक की रचना की। उनका वैराग्य से सम्बन्धित एक श्लोक इस प्रकार है —

*भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।  
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णानजीर्णावयमेव जीर्णाः ॥<sup>10</sup>*

**भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ता**— इसका आशय है कि मेरे पास अनेकानेक प्रकार के भोग उपलब्ध हैं अनेक रानियां व सेवा करने वाले सेवक अपार धन सम्पत्ति हाथी घोड़े तथा सिपाही हैं मैं समझता था कि मैं इन सुखों को भोगने वाला हूँ लेकिन यह मेरी भूल थी वास्तव में मैं उनको नहीं भोग रहा था, अपितु वे ही मुझे भोग रहे थे।

**तप्तो न तप्तः वयमेव तप्तः** — इसके माध्यम से भर्तृहरि जी ने कहा है कि मैं समझता था कि मैं ही बहुत तपस्या करने वाला तपस्वी हूँ लेकिन यह मेरी भूल थी। न मैं तपस्या करता था न तप अपितु यह मेरी भूल थी वे तपस्या व तप मुझको ही तपा रहे थे।

**तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः**— इस श्लोकांश के माध्यम से राजा भर्तृहरि के कहने का तात्पर्य है कि मैं समझता था कि समय व्यतीत हो रहा है मेरी स्त्रियों के प्रति काम की जो तृष्णा है धन के प्रति जो तृष्णा है समय के फेर से जीर्ण हो जायेगी लेकिन समय वहीं का वहीं रहा अपितु तृष्णा कम नहीं हुयी बढ़ती ही चली गयी पर यह मेरा जो सम्पूर्ण क्रियाओ का आधार यह शरीर जीर्ण हो गया।

**कालो न यात् वयमेव यात्** — इस श्लोकांश के माध्यम से राजा भर्तृहरि जी ने कहा है कि मुझे प्रतीत होता था कि सबको व्यक्त करने वाला यह जो काल है वह तो कहीं नहीं गया अपितु अब मैं ही काल के मुख का ग्रास बनकर काल के मुख में जा रहा हूँ। अतः भर्तृहरि के द्वारा वर्णित इस श्लोक के द्वारा उत्कृष्ट वैराग्य प्रतीत होता है।

वैराग्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है —

*ओम् ईशावास्यमिदं सर्वयत्किंच जगत्यां जगत् ।  
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥<sup>11</sup>*

अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ जड—चेतन स्वरूप जगत् है वह सब का सब सर्वाधार सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्ति, सर्वज्ञ, सर्वकल्याण, गुणस्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है। इसका कोई भी अंश उनसे रहित नहीं है। ऐसा समझकर परब्रह्म परमात्मा को ध्यान में रखते हुए इस जगत् में जो कुछ भी पदार्थ है उन सबका केवल कर्तव्य पालन के निमित्त उपभोग करना चाहिए। विषयों में मन को नहीं फसने देना चाहिए क्योंकि अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वश में की हुई रागद्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है —

*रागद्वेषवियुक्तेषु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।  
आत्मवश्यैर्विधियात्मा प्रसादमाधिगच्छति ॥<sup>12</sup>*

अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर उसके (जीवात्मा) सम्पूर्ण दुखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले योगी (वैरागी) की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में भली भांति स्थिर हो जाती है।<sup>13</sup> श्रीमद्भगवद्महापुराण में वैराग्य को भक्ति का पुत्र बताया गया है—

*अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतो ।  
ज्ञानवैराग्यनामनो काल योगेन जर्जरौ ॥<sup>14</sup>*

सांख्य—योग के ग्रन्थों में वैराग्य की चार संज्ञायें वर्णित हैं — यतमान व्यतिरेक एकेन्द्रिय और वशीकार संज्ञा। चित्त में जो रागादि कषाय (दोष) हैं वे चित्त के मल कहे जाते हैं। वे ही इन्द्रियों को अपने—अपने विषयों में प्रवृत्त कराते रहते हैं। चित्त के मैल अब आगे इन्द्रियों को उनके विषयों में प्रवृत्त न कराये। इस प्रकार की इच्छा से इन रागादि की निवृत्ति करने के लिये मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा नामक भावों के यत्न का आरम्भ ही यतमान संज्ञा नाम का प्रथम वैराग्य कहा जाता है। इन मैत्री आदि भावों के अनुष्ठान का प्रयत्न करते करते चिकित्सक के समान “इतने चित्तमल पक्व (निवृत्त) हो चुके हैं इतने हो रहे हैं और इतने वाकी हैं इस प्रकार पक्व तथा पकने वाले चित्तमलों का शेष रहे चित्तमलों की निवृत्ति करने के लिए पृथक पृथक रूप से जो निश्चय है उसे व्यतिरेक संज्ञक द्वितीय वैराग्य कहते हैं। जिस अवस्था में परिपक्व अर्थात् नष्ट हुए चित्तमल इन्द्रियों को अपने अपने विषयों की ओर प्रवृत्त कराने में नितान्त असमर्थ होते हुए भी कभी कभी प्रवृत्त कराने के लिए सूक्ष्म रूप से उत्सुक होते रहते हैं। उनका मन नाम की एक इन्द्रिय में जो व्यवस्थापन है वह एकेन्द्रिय नामक द्वितीय वैराग्य कहलाता है। इन तीनों नामों को अपर वैराग्य कहा जाता है। जिस भूमिका में विवेक बल से दिव्यादिव्य विषयों में पहले बतायी हुई उत्कण्ठा की भी निवृत्ति हो जाने से रागसहित इन्द्रियों के वश में हो जाने से उपेक्षा बुद्धि उत्पन्न हो जाती है वह वशीकार नाम का वैराग्य कहा जाता है। इसीको पर वैराग्य भी कहते हैं।<sup>15</sup> मुख्य रूप से वैराग्य दो प्रकार का होता है अपर वैराग्य और पर वैराग्य। दृष्ट (यथा—रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श धन सम्पत्ति अन्न खान पान स्त्री राज ऐश्वर्य आदि) और अनुश्रविक (यथा वेद शास्त्रादि द्वारा सुने गये हैं) विषयों में तृष्णा के न रहने को वशीकार या अपर वैराग्य कहते हैं—

*दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्<sup>16</sup>*

जब चित्त से तृष्णा निवृत्त हो जाती है तब चित्त एकाग्र हो जाता है, यही सम्प्रज्ञात—समाधि है। इसकी उच्चतम अवस्था में चित्त और पुरुष के भेद का साक्षात्कार होता है। इसका नाम पुरुषख्याति सत्वपुरुषान्यता ख्याति तथा विवेक ख्याति है। इस ख्याति में ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है त्यों त्यों चित्त निर्मल होता जाता है और आत्म शुद्धि उत्तमोत्तम प्रतीत होती है चित्त की अत्यन्त निर्मलता में यह पुरुष ख्याति भी चित्त की एक सात्विक वृत्ति और गुणों का ही परिणाम होने लगती है। तब इस विवेक ख्याति से भी वैराग्य उत्पन्न होने लगता है। इस प्रकार गुणों से भी तृष्णा रहित अथवा विरक्त होना पर वैराग्य—*तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णम्<sup>17</sup>* इस वैराग्य के उदय होने से योगी धर्ममेघ — समाधिनिष्ठ हुआ अपने मन में मानता है कि जो प्राप्त करने योग्य था वह प्राप्त हो गया जो नाश करने योग्य पांच क्लेश थे वे नष्ट हो गये, अब संसार का वह संकम सिलसिला टूट गया है जिसके टूटे विना मनुष्य उत्पन्न होकर मरता है और मरकर उत्पन्न होता है यह वैराग्य ही ज्ञान की पराकाष्ठा है। वैराग्य से प्रकृतिलय ; प्रकृति का विनाशद्ध होता है — *वैराग्यात् प्रकृतिलयः<sup>18</sup>* वैराग्य के फल परमसुख को व्यक्त करते हुए भगवान शिव ने मां पार्वती उमा से श्री गुरुगीता में कहा है—

*न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।  
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरकान्तवासिनः ॥<sup>19</sup>*

अर्थात् राग और विराग दोनों में सुख नहीं है। सुख तो दोनों के पार वीतराग में है। जब तक मन है तब तक सुख की आशा नहीं की जा सकती, मन के पार है, चेतना, उसको प्राप्त करने पर अच्छा और बुरा दोनों ही छूट जाते हैं। बुरा यदि दुःख का कारण बन जाता है तो अच्छा भी दुःख का कारण बन जाता है। ये दोनों ही बन्धन के कारण हैं। संसार में इसी कारण कोई दुःखों से मुक्त नहीं है। स्वयं इन्द्र भी

वासनाग्रस्त हैं वह भी सुखी नहीं है। उसे भी दैव्यों को चुनौती बनी रहती है जिसके लिए उसे भी छल प्रपंच करने पड़ते हैं। चक्रवर्ती राजा भी कामना के कारण सदा दुःखी रहता है। सुखी तो केवल वह मुनि है जो एकान्त में रहता है जिसकी समस्त कामनाएं छूट चुकी हैं जिसकी कोई वासना नहीं जो हर परिस्थिति से सन्तुष्ट है जिसका किसी से कोई राग नहीं क्योंकि राग से ही द्वेष उत्पन्न होता है। वह वीतरागी है वही सबसे सुखी है। वह ब्रह्मरस का पान करके परमात्मा में तृप्त होकर इन्द्र को भी गरीब मानता है तो राजाओं की बात ही क्या ? वैराग्यवान (वैराग्य प्राप्त) पुरुष के मन में दुःखों की प्राप्ति होने पर मन में उद्वेग नहीं होता सुखों की प्राप्ति में सर्वथा निःस्पृह रहता है और उसके राग भय और क्रोध नष्ट हो जाते हैं—

*दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।  
वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते। १<sup>१</sup>*

जैसे कछुवा सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही वैराग्य प्राप्त पुरुष इन्द्रियों के विषयों को सब प्रकार से हटा लेता है —

*यदा संहरते चायं कूर्मो गानीव सर्वशः।  
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। १<sup>२</sup>*

सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है उस नित्य ज्ञान स्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में वैराग्य प्राप्त योगी जागता है और जिस नाशवान सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं परमात्मा के तत्व को जानने वाले वैराग्यवान मुनि के लिए वह रात्रि के समान है—

*या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ती संयमी।  
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः। १<sup>३</sup>*

जैसे नाना नदियों जल सब ओर परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसके विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग वैराग्य प्राप्त पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं वही पुरुष परम शक्ति को प्राप्त होता है भोगों को चाहने वाला नहीं—

*आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।  
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न  
कामकामी। १<sup>४</sup>*

महाभारत में अनुशासन पर्व के अन्तर्गत दान धर्म पर्व में वैराग्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये भगवान शिव ने उमा से कहा है— पुरुष सबसे पहले घर में स्थित रहकर सब प्रकार के ऋणों से उन्मूलन हो अन्त में उन घरों का परित्याग कर दे। इस तरह गाहस्थ आश्रम को त्याग कर उन्हें वानप्रस्थ आश्रम का सहारा ले लेना चाहिए। वन में गुरु की आज्ञा लें, विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करे और दीक्षा ग्रहण करके यथेचित् रीति से अपने सदाचार पालन करे और अनिन्द्य आचरण से रहे। सर्वत्र शिक्षा ग्रहण करे रात में सदा परमात्मा का चिन्तन करे, कोप का कारण प्राप्त होने पर भी कभी कुपित न हावें। ब्रह्मचर्य, वनवास, पवित्रता, इन्द्रिय संयम और समस्त पापों से दूर रहकर हल्का हल्का भोजन करे इन्द्रियों को संयम में रखे और परमात्म चिन्तन में लगा रहे। जब वह मन वाणी व क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी के प्रति पापभाव नहीं करता तब वह वैराग्यवान ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। भगवान शिव ने काम को वृक्ष के रूपक के माध्यम से समझाते हुए कहा है—एक काममय वृक्ष है जो मोह संचयरूपी बीज से उत्पन्न हुआ है। वह काममय विचित्र वृक्ष हृदय देश में ही स्थित है। अज्ञान ही उसकी मजबूत जड़ है। सकाम करने की इच्छा ही उसे खींचती

है। क्रोध और लोभ ही उसका विशाल तना है। पाप ही उसका सार भाग है। आयास प्रयास ही उसकी शाखायें हैं। तीव्र शोक पुष्प है, भय अंकुर है, नाना प्रकार के संकल्प उसके पत्ते हैं। यह प्रमाद से बढ़ा हुआ है। बड़ी भारी पिपासा यातृष्णा की लता बनकर उस काम वृक्ष में सब ओर लिपटी हुई है। अज्ञानी मनुष्य में ही यह काममय वृक्ष उत्पन्न होता और बढ़ता है। वैराग्यवान में यह अंकुरित नहीं होता है। यदि हुआ भी तो पुनः कट जाता है। यह काम कठिन उपायों से साध्य है अनित्य है इसके इसके फल निःसार है उसका आदि और अन्त भी दुःख है।<sup>१५</sup> यह रजोगुण से उत्पन्न काम ही क्रोध है यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी न अघाने वाला और बड़ा ही पापी है यह वैराग्य का शत्रु है—

*काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।  
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। १<sup>६</sup>*

वैरागी पुरुष इस मनुष्य शरीर में शरीर का नाश होने से पहले ही काम क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है और वह सुखी है।<sup>१७</sup> वैरागी पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है वह जल से कमल के पत्ते की भांति पाप से लिप्त नहीं होता।<sup>१८</sup> यह संसार एक नदी के समान है जिसका उपादान या उदगम सत्य है रूप इसका किनारा मन ज्ञोत स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है, गन्ध उस नदी की कीचड़, शब्द, जल और स्वर्गरूपी दुर्गम घात है। शरीर रूपी नौका की सहायता से उसे पार किया जा सकता है, क्षमा इसको खेने वाली लग्गी (बल्ली) और घर्म इसको स्थिर करने वाली रस्सी लंगर है यदि वैराग्य रूपी अनुकूल पवन का सहारा मिले तो इस शीघ्रगामिनी नदी को पार किया जा सकता है।<sup>१९</sup> वैरागी पुरुष को वस्तुओं के संग्रह की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि वस्तुओं के संग्रह से महान दोष प्रकट होता है। रेशम का कीड़ा अपने संग्रह के दोष के कारण ही बन्धन में पड़ता है। स्त्री-पुत्र और कुटुम्ब में आसक्त रहने वाले प्राणी उसी प्रकार कष्ट पाते हैं जैसे जंगल के बूढ़े हाथी तालाब के दलदल में फंसकर दुःख उठाते हैं। जिस प्रकार महान जाल में फंसकर मत्स्य पानी से बाहर आकर तड़पते रहते हैं उसी प्रकार स्नेह जाल से आकर्षित होकर प्राणी अत्यन्त कष्ट उठाते हैं। संसार में स्त्री पुत्र शरीर और संग्रह सब कुछ पराया है। सब नाशवान है इसमें क्या अपना है ? केवल पाप और पुण्य।<sup>२०</sup> इसीलिए वैरागी पुरुष इन सबसे विरक्त रहता है। वैरागी (सन्त) की महिमा का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है —

*नहिं दरिद्र सम दुःख जगमाहीं। सन्त मिलन सम सुख जग  
नाहीं।।  
पर उपकार वचन मन काया। सन्त सहज सुभाउ खगराया  
।।  
सन्त सहहिं दुःख परहित लागी। परदुःख हेतु असन्त  
अभागी।।  
भूर्ज तरु सम संत कृपाल। परहित निति सह पिवाति विसाला  
।।  
सन्त उदय संतत् सुखकारी। विश्व सुखद जिमि इन्दु  
तमारी।।*

अर्थात् संसार में दरिद्रता के समान दुःख नहीं है तथा सन्तों के मिलन के समान जगत् में सुख नहीं और मन वचन शरीर से परोपकार करना सन्तों का सहज स्वभाव है। सन्त दुसरो की भलाई के लिए दुःख सहते हैं और भोज के वृक्ष के समान दुसरो के हित के लिए भारी सें भारी विपत्ति सहते हैं। सन्तों का अभ्युदय सदा ही सुखकर होता है जैसे सूर्य और चन्द्रमा का उदय विश्वभर के लिए सुखदायक है।

“जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः”<sup>32</sup> अर्थात् वैरागी के लिए परमात्मा के अलावा और कुछ है ही नहीं।

निष्कर्षतः श्रीमद्भगवद्गीता में वैराग्य का स्वरूप के विषय में बताया गया है कि सांसारिक अनित्य वस्तु (सृष्टि के समस्त दृश्य प्रपंच) के प्रति आसक्ति को त्यागकर नित्य वस्तु ब्रह्म और परमात्मा की ओर अग्रसर होना ही वैराग्य का स्वरूप है। यह पर तथा अपर के भेद से दो प्रकार का होता है तथा यह आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख साधन है।

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/52
2. सर्ववेदान्त सार, 22
3. अष्टावक्रगीता, 1/2
4. विवेक चूडामणि, 1/19
5. वेदान्त सार (साधन चतुष्टयम्), 1
6. विवेक चूडामणि, 1/22
7. श्रीमद्भागवत् महापुराण (महात्म्यं), 4/37-75
8. श्रीमद्भागवत् महापुराण (महात्म्यं), 4/79
9. योगवासिष्ठ (वैराग्य प्रकरण), 18/53-62
10. वैराग्य शतक (भर्तृहरि),
11. ईशावास्योपनिषद्, 1
12. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/54
13. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/65
14. श्रीमद्भागवत् महापुराण (महात्म्यं), 1/45
15. सांख्यकारिका (हरीश प्रकाशन मन्दिर आगरा उ.प्र.), प्र.सं. 99
16. पातंजल योग प्रदीप (समाधिपाद), 15
17. पातंजल योग प्रदीप (समाधिपाद), 16
18. सांख्यकारिका, 45
19. श्रीगुरुगीता, 2/91
20. श्रीगुरुगीता, 2/92
21. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/56
22. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/58
23. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/69
24. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/70
25. महाभारत/ अनुशासन पर्व (दान धर्म पर्व), 145
26. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/37
27. श्रीमद्भगवद्गीता, 5/23
28. श्रीमद्भगवद्गीता, 5/10
29. महाभारत/ शान्ति पर्व/ मोक्ष धर्म पर्व, 329/38-39
30. महाभारत/ शान्ति पर्व/ मोक्ष धर्म पर्व, 329/29-32
31. श्रीरामचरितमानस (उत्तरकाण्ड)
32. श्रीमद्भगवद्गीता, 6/7